हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
अल्मोड़ा–263 601, उत्तराखण्ड, भारत

ISBN 978-93-5407-728-9

पर्वतीय क्षेत्रों की पारम्परिक फसलों का उन्नत उत्पादन एवं कटाई उपरान्त प्रसंस्करण तकनीकी द्वारा आय सृजन

अनुराधा भारतीय
जे.पी. आदित्य
निर्मल चन्द्रा
जितेन्द्र कुमार
लक्ष्मीकान्त
अरुणव पट्टनायक

पर्वतीय क्षेत्रों की पारम्परिक फसलों का उन्नत उत्पादन एवं कटाई उपरान्त प्रसंस्करण तकनीकी द्वारा आय सृजन

अनुराधा भारतीय
जे.पी. आदित्य
निर्मल चन्द्रा
जितेन्द्र कुमार
लक्ष्मीकान्त
अरुणव पट्टनायक

भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
अल्मोड़ा–263 601, उत्तराखण्ड, भारत

उद्धरण

भारतीय अनुराधा, आदित्य जे.पी., चन्द्रा निर्मल, कुमार जितेन्द्र, लक्ष्मीकान्त एवं पट्टनायक अरुणव (2020) पर्वतीय क्षेत्रों की पारम्परिक फसलों का उन्नत उत्पादन एवं कटाई उपरान्त प्रसंस्करण तकनीकी द्वारा आय सृजन, भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा–263 601, उत्तराखण्ड, भारत, पृष्ठ 111

यू.एन. इन्वायरमेन्ट–जी.ई.एफ. द्वारा पोषित परियोजना "कृषि जैव विविधता के संरक्षण एवं उपयोग द्वारा कृषि क्षेत्र की मुख्य धारा में लाना, बदलती जलवायु से बचाना एवं पारिस्थितिकी सेवाऐं सुनिश्चित करना" के अन्तर्गत भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा द्वारा वर्ष 2020 में प्रकाशित

संकलन एवं संपादन

अनुराधा भारतीय, जे.पी. आदित्य, निर्मल चन्द्रा, जितेन्द्र कुमार, लक्ष्मीकान्त एवं अरुणव पट्टनायक

©भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा, 2020

संपादन सहयोग

श्रीमती रेनू सनवाल (तकनीकी अधिकारी) एवं डा. हेमलता जोशी (वरिष्ठ शोधकर्ता)

प्रकाशक

निदेशक, भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
अल्मोड़ा–263 601, उत्तराखण्ड, भारत
दूरभाषः 91–5962–230208 (कार्यालय) 91–5962–230130 (निवास)
फैक्सः 91–5962–231539
वेबसाइटः http://www.vpkas.icar.gov.in
ईमेलः director.vpkas@icar.gov.in, vpkas@nic.in

ISBN No.: 978-93-5407-728-9

मुद्रण सहयोग

पी.एम.ई. प्रकोष्ठ

प्रारूप एवं मुद्रण

मैसर्स वीनस प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स, बी–62/8, नरैना इंडस्ट्रियल एरिया, फेज II, नई दिल्ली–110028,
दूरभाषः 011–45576780, मोबाइलः 9810089097, ईमेलः pawannanda@gmail.com

विषय-सूची

क्रम सं.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
1.	**उत्तराखण्ड में पारंपरिक फसल विविधता एवं इसका संरक्षण** *ममता आर्य एवं पी.एस. मेहता*	1
2.	**मानव स्वास्थ्य के लिए उत्तराखण्ड की पारंपरिक फसलों का पोषण एवं औषधीय महत्व** *रमेश सिंह पाल एवं देवेंद्र शर्मा*	8
3.	**उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों हेतु गेहूँ एवं जौ उत्पादन की उन्नत तकनीकें** *लक्ष्मीकांत, नवीन चंद्र गहत्याड़ी, दिबाकर महंता और कृष्णकांत मिश्रा*	16
4.	**उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों हेतु धान उत्पादन की उन्नत तकनीकें** *जे.पी. आदित्य, अनुराधा भारतीय, राजाशेकरा एच. एवं वी.एस. मीना*	24
5.	**उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों हेतु उन्नत मक्का उत्पादन तकनीकें** *राजेश खुल्बे, अरूणव पट्टनायक, दिबाकर महन्ता, राजाशेकरा एच., जे. स्टेनली एवं देवेन्द्र शर्मा*	36
6.	**उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों हेतु कदन्न फसलों के उत्पादन की उन्नत तकनीकें** *डी.सी. जोशी एवं आर.पी. मीणा*	44
7.	**उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों हेतु रामदाना उत्पादन की उन्नत तकनीकें** *डी.सी. जोशी एवं आर.पी. मीणा*	49
8.	**उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों हेतु उगल उत्पादन की उन्नत तकनीकें** *डी.सी. जोशी एवं आर.पी. मीणा*	54
9.	**उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों हेतु गहत उत्पादन की उन्नत तकनीकें** *अनुराधा भारतीय, जे.पी. आदित्य, रमेश सिंह पाल, शेर सिंह, के.के. मिश्रा, ए.आर.एन.एस. सुबन्ना एवं हेमलता जोशी*	59

10. **उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों हेतु काली सोयाबीन (भट्ट) उत्पादन की उन्नत तकनीकें** 65
अनुराधा भारतीय, जे.पी. आदित्य, रमेश सिंह पाल, शेर सिंह, के.के. मिश्रा, ए.आर.एन.एंस. सुबन्ना एवं हेमलता जोशी

11. **उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों हेतु राजमा उत्पादन की उन्नत तकनीकें** 72
अनुराधा भारतीय, जे.पी. आदित्य, रमेश सिंह पाल, शेर सिंह, के.के. मिश्रा, ए.आर.एन.एस. सुबन्ना एवं हेमलता जोशी

12. **उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों हेतु अरहर उत्पादन की उन्नत तकनीकें** 80
अनुराधा भारतीय, जे.पी. आदित्य, रमेश सिंह पाल, शेर सिंह, के.के. मिश्रा, ए.आर.एन.एस. सुबन्ना एवं हेमलता जोशी

13. **उत्तराखण्ड में राई–सरसों की उन्नत उत्पादन तकनीकी** 86
उषा पंत, रश्मि, नेहा दहिया एवं प्रीती लोहनी

14. **पारंपरिक फसलों की कटाई उपरान्त प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी** 98
श्याम नाथ, जितेन्द्र कुमार, शेर सिंह एवं जयदीप कुमार बिष्ट

15. **आय वृद्धि हेतु अल्पप्रयुक्त फसलों के मूल्यवर्धित उत्पाद** 105
शेर सिंह एवं श्याम नाथ

प्राक्कथन

आधुनिक कृषि के तीव्र विस्तार से कृषि जैव विविधता को काफी हानि हुई है। जलवायु परिवर्तन के दौर में सिर्फ कुछ मुख्य फसलों पर निर्भरता ने खाद्य उत्पादन को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति अत्यंत संवेदनशील बना दिया है, जिसके परिणामस्वरूप विश्व के कई भागों में खाद्य असुरक्षा और कुपोषण पैदा हो गया है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन के अनुसार, दुनिया की 75 प्रतिशत खाद्य फसल विविधता बीसवीं सदी में विलुप्त हो गई है, क्योंकि किसानों ने उच्च उपज क्षमता वाली फसलों को अपनाकर अपनी पारम्परिक स्थानीय किस्मों को उगाना छोड़ दिया है। यद्यपि आदिकाल से कृषक कई फसलों की खेती करते आ रहे हैं, लेकिन वर्तमान में केवल कुछ मुख्य फसलें (चावल, गेहूँ, आलू और मक्का) लगभग 60 प्रतिशत कैलोरी और प्रोटीन की आपूर्ति कर रही हैं। इन व्यावसायिक फसलों से परे, कुछ पोषक तत्वों से भरपूर तथा कठोर जलवायु परिस्थितियों के प्रति सहिष्णु पारम्परिक फसलें कुछ दशक पहले आम लोगों के जीवन में भोजन, चारा, रेशा, तेल या औषधि इत्यादि के रूप में एक महत्वपूर्ण हिस्सा थीं, लेकिन समय के साथ ये फसलें उपेक्षित हो गयी हैं। वर्तमान में भी जैव विविधता से परिपूर्ण क्षेत्रों में रहने वाले ग्रामीण एवं आदिवासी समुदाय अपनी खाद्य आपूर्ति के लिए कई अल्प प्रयुक्त उपेक्षित पारम्परिक फसलों पर निर्भर हैं, जो उन्हें खाद्य असुरक्षा और कुपोषण की समस्या से बचाने में मदद करती हैं। हालांकि, इन प्रजातियों के संरक्षण के अभाव में उनकी खेती और उपयोग से सम्बन्धित पारंपरिक ज्ञान भी विलुप्त हो रहा है।

बढ़ती पर्यावरणीय समस्याएँ एवं मुट्ठी भर प्रमुख फसलों पर निर्भरता के फलस्वरूप उत्पन्न कृषि पारिस्थितिकी, खाद्य एवं पोषण, आर्थिक संकट और अस्थिरता को दुनिया भर में समझा एवं देखा जा रहा है तथा इससे निपटने के लिए पारम्परिक खाद्य प्रणालियों को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया जा रहा है। इस दिशा में किसानों की आजीविका और पोषण के लिए अति महत्वपूर्ण पारम्परिक फसलें जैसे दालें, कदन्न, कूट अनाज इत्यादि को आधुनिक फसल प्रणाली में समायोजित करके कृषि को पर्यावरण सम्बन्धी तनावों तथा खाद्य असुरक्षा के प्रति अधिक सहिष्णु बनाया जा सकता है। इसके अलावा, स्थानीय फसलें सांस्कृतिक पहचान को सुदृढ़ करती हैं और कृषि के टिकाऊपन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अतः जलवायु परिवर्तन के युग में पारम्परिक फसलों को पुनर्जीवित कर कृषकों के लिए लाभकारी बनाना समय की माँग है, तथा इसके लिए इन फसलों की उन्नत उत्पादन एवं कटाई उपरान्त प्रसंस्करण तकनीकी का ज्ञान कृषकों के लिए अत्यंत आवश्यक है, ताकि कृषक इन फसलों से अधिक से अधिक लाभ कमा सकें।

इस दिशा में यू.एन. इन्वायरमेन्ट–जी.ई.एफ. परियोजना "कृषि जैव विविधता के संरक्षण एवं उपयोग द्वारा कृषि क्षेत्र की मुख्य धारा में लाना, बदलती जलवायु से बचाना एवं पारिस्थितिकी सेवाऐं सुनिश्चित करना" के अन्तर्गत यह प्रकाशन पारम्परिक तथा अल्पप्रयुक्त फसलों की उन्नत उत्पादन एवं कटाई उपरान्त प्रसंस्करण तकनीकी से संबंधित विषयों का संकलन है, जिसे सरल भाषा में व्यक्त किया गया है, जिससे अनुसंधानकर्ता, विद्यार्थीगण, कृषक तथा जन सामान्य लाभान्वित हो सकें।

अनुराधा भारतीय
जे.पी. आदित्य
निर्मल चन्द्रा
जितेन्द्र कुमार
लक्ष्मीकान्त
अरुणव पट्टनायक

आमुख

भारत, विश्व का सातवां एवं एशिया में दूसरा सबसे बड़ा देश है। यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियाँ तथा जलवायुवीय विषमताएँ सुदृढ़ कृषि जैव विविधता का निर्माण करती हैं, जो राजस्थान के वर्षाहीन क्षेत्रों से लेकर उत्तर–पूर्वी भारत के उच्च वर्षा वाले क्षेत्रों, कम ठंडे क्षेत्रों से लेकर अत्यधिक ठंडे (बर्फ से ढके) क्षेत्रों, गंगा नदी से लेकर ब्रह्मपुत्र तक के मैदानों में दिखाई देती हैं। कृषि के स्थायित्व एवं खाद्य सुरक्षा में अति महत्वपूर्ण कृषि जैव विविधता आदिकाल से ही स्थानीय लोगों द्वारा विकसित, संरक्षित एवं संवर्धित की गयी है। प्राचीन समय में लोग बड़े पैमाने पर पोषण तथा औषधीय गुणों से भरपूर विभिन्न प्रकार की फसलें उगाया करते थे तथा उनका सेवन किया करते थे, जिससे वे आजीवन स्वस्थ एवं दीर्घायु हुआ करते थे। लेकिन, व्यावसायिक कृषि के इस युग में नयी पीढ़ियाँ धीरे–धीरे इन पारम्परिक फसलों से दूर हो गयी हैं, जिसके फलस्वरूप कृषि तथा प्रचलित खाद्य प्रणाली से पारम्परिक फसलें व उनकी स्थानीय प्रजातियाँ विलुप्त होती जा रही हैं। दुनिया भर में उपलब्ध लगभग 30,000 खाने योग्य पौधों की प्रजातियों में से सिर्फ 103 प्रजातियाँ ही मानव आहार में 90 प्रतिशत कैलोरी की आपूर्ति करती हैं तथा इसमें से भी केवल कुछ ही फसलें जैसे मक्का, चावल, गेहूँ, सोयाबीन और आलू 60 प्रतिशत कैलोरी का स्रोत हैं। वर्तमान में कुछ मुख्य फसलों पर अत्यधिक निर्भरता एवं कम आहार विविधता दुनिया भर में कुपोषण तथा पोषण अंतराल का मुख्य कारण हैं। जो इस बात को दर्शाता है, कि आज विश्व में पर्याप्त खाद्यान्न उत्पादन होने के बावजूद उचित पोषण की अपर्याप्तता है। साथ ही इन फसलों को उगाने में लगने वाले संसाधनों की अधिक खपत जलवायु परिवर्तन के इस दौर के कृषि के स्थायित्व के अनुकूल नहीं है। अतः कुपोषण को दूर करने तथा कृषि एवं खाद्य प्रणाली के टिकाऊपन के लिए उच्च पोषणयुक्त पारम्परिक तथा अल्पप्रयुक्त फसलों के उत्पादन में सुधार करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

पारम्परिक तथा अल्पप्रयुक्त फसलें खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन हैं। ऐतिहासिक रूप से, पारम्परिक तथा अल्पप्रयुक्त फसलों का उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर किया जाता रहा है तथा इनमें से कई फसलों की स्थानीय स्तर पर काफी मांग भी रहती है। ये फसलें उच्च पोषण गुणवत्ता युक्त होती हैं, साथ ही इनमें सूक्ष्म पोषक एवं औषधीय तत्वों की भी भरमार होती है। स्थानीय स्तर पर ये फसलें खाद्य और पोषण सुरक्षा में काफी योगदान देती हैं।

इसके अलावा इनकी जैविक एवं अजैविक तनावों को सहन करने की अद्वितीय क्षमता के कारण इन्हें कम संसाधनों के साथ सीमांत कृषि परिस्थितियों पर आसानी से उगाया जा सकता है। इन्हीं विशेषताओं के कारण पारम्परिक तथा अल्पप्रयुक्त फसलों के महत्व को वैश्विक स्तर पर भी समझा गया है तथा इन फसलों को कृषि की मुख्यधारा में लाने हेतु भी कई प्रयास किये गए हैं। इस दिशा में यू.एन. इन्वायरमेन्ट–जी.ई.एफ. परियोजना "कृषि जैव विविधता के संरक्षण एवं उपयोग द्वारा कृषि क्षेत्र की मुख्य धारा में लाना, बदलती जलवायु क्षेत्रों से बचाना एवं पारिस्थितिकी सेवाऐं सुनिश्चित करना" को भारत के चार विभिन्न कृषि जलवायुवीय क्षेत्रों में लागू किया गया है। इसमें फसल विविधता की उन्नत तकनीकी व बेहतर संस्थागत ढाँचों को स्थापित करने को प्राथमिकता दी गयी है। इस परियोजना को वैश्विक पर्यावरण सुविधा एजेन्सी ने संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण के द्वारा वित्तपोषित किया है तथा इसे बायोवर्सिटी इंटरनैशनल एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा संयुक्त रूप से क्रियान्वित किया जा रहा है। इस परियोजना के अन्तर्गत किसानों व वैज्ञानिकों की सहभागिता से विभिन्न पारम्परिक तथा अल्पप्रयुक्त फसलों व उनकी स्थानीय प्रजातियों को चयनित कर उनका पोषक तत्वों के लिए मूल्यांकन किया जायेगा, जिससे पोषक तत्वों से भरपूर प्रजातियों के बीजों का सामुदायिक स्तर पर उत्पादन एवं उपलब्धता सुनिश्चित करने के साथ–साथ व्यावसायिक स्तर पर विपणन भी किया जा सकेगा, जो कि आजीविका सुनिश्चित करने एवं कुपोषण की समस्या से निपटने में सहायक सिद्व होगा।

पारम्परिक फसलों को कृषि की मुख्यधारा में लाने के लिए इन फसलों का उत्पादन बढ़ाने, प्रसंस्करण तथा मूल्यसंवर्धन की नवीन तकनीकों की भी नितान्त आवश्यकता है, ताकि किसान इन तकनीकों को अपनाकर पारम्परिक फसलों को अपनी आय का जरिया बना सके साथ ही जलवायु परिवर्तन के दौर में बढ़ती हुयी आबादी के लिए कुपोषण जैसी भयावह समस्या के निराकरण में अपना योगदान दे सके। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक कृषकों को उनकी पारम्परिक तथा अल्पप्रयुक्त फसलों के उन्नत उत्पादन एवं कटाई उपरान्त प्रसंस्करण के लिए वांछित मार्गदर्शन प्रदान करेगी, ताकि कृषक उन्नत तकनीकियाँ अपनाकर आय सृजन कर उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हों। मैं इस पुस्तक के संपादकों और लेखकों को बधाई देता हूँ कि यह पुस्तक केवल वैज्ञानिक समुदाय को ही नहीं, बल्कि अनुसंधान और विकास के प्रयासों के योजनाकारों को भी लाभान्वित करेगी।

नई दिल्ली
दिनाँकः 30 जुलाई, 2020

(डॉ0 जय चंद राना)
राष्ट्र प्रतिनिधि एवं राष्ट्रीय समन्वयक
यू.एन. इन्वायरमेन्ट–जी.ई.एफ. परियोजना, भारत

अध्याय-1

उत्तराखण्ड में पारंपरिक फसल विविधता एवं इसका संरक्षण

ममता आर्य एवं पी.एस. मेहता

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो क्षेत्रीय केंद्र, भवाली

उत्तराखण्ड मुख्य रूप से एक कृषि आधारित राज्य है, हालांकि देश के कुल क्षेत्रफल और उत्पादन में इसकी हिस्सेदारी बहुत कम है। उत्तराखण्ड राज्य मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित है, तराई, भाभर और पहाड़ी, जिनमें से लगभग 86 प्रतिशत क्षेत्र पहाड़ों से घिरा हुआ है। देश के अधिकांश राज्यों की तरह, उत्तराखण्ड राज्य की अर्थव्यवस्था में कृषि बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राज्य की भौगोलिक स्थिति और विविध कृषि–जलवायु क्षेत्र के कारण, राज्य के अधिकांश हिस्सों में निर्वाह–खेती होती है। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में 60–70 प्रतिशत खाद्यान्नों का उत्पादन यहाँ के छोटे किसानों द्वारा किया जाता है, जो पारंपरिक खेती करते हैं और स्थानीय बाजार में अधिशेष उपज बेचते हैं। यहाँ किसान पारंपरिक तरीके से कई तरह की फसलों की खेती करते हैं, जिसमें मुख्य फसलें हैं मोटे अनाज (रागी, झुंगरा, कौणी, चीणा आदि), धान, गेहूँ, जौ, दालें (गहत, भट्ट, मसूर, लोबिया, राजमाश आदि), तिलहन, अल्पप्रयुक्त फसलें (चौलाई, उगल, बथुआ, भंगीरा, जखिया आदि)। अधिकांश किसान इन फसलों की पारंपरिक भू–प्रजातियों का उपयोग करते हैं।

पारंपरिक फसल विविधता

कृषि जैव–विविधता का विकास किसानों, चरवाहों तथा मत्स्य पालनकर्ताओं द्वारा श्रमपूर्वक किये गये चयन तथा मानव जाति द्वारा भोजन तथा कृषि के लिये महत्त्वपूर्ण जैविक सम्पदा के निरंतर रख–रखाव द्वारा हुआ है। फसलों की किस्में, जानवरों तथा मछलियों की प्रजातियाँ, जंगलों में उपलब्ध प्राकृतिक सम्पदा, जंगली क्षेत्र तथा जलीय पारिस्थितिक तंत्र कृषि जैव–विविधता के अंतर्गत आते हैं। कई संवेदनशील क्षेत्रों में जो लगातार पारिस्थितिक, जलवायु और आर्थिक रुप से संवेदनशील हैं, ऐसे क्षेत्रों में फसलों की आनुवंशिक विविधता किसान की स्थायी आजीविका के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। यह किसान के सैकड़ों वर्षों के समर्पित प्रयासों का परिणाम है, कि वह अपने कृषि–जलवायु क्षेत्र के लिए उपयुक्त प्रजातियों के विकास और संरक्षण में सफल रहा है। उगाई जाने वाली फसलों के प्रकार और उनकी किस्मों की विविधता क्षेत्र की ऊँचाई पर